

संत गुरु रविदास : भाषायी परिवेश और अभिव्यक्ति

डॉ. आर.पी. वर्मा,

एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,

राजकीय महाविद्यालय गोसाईंखेड़ा,

जनपद—उन्नाव, उ.प्र.

प्रत्येक देश का युगानुसार अपना भाषायी – परिवेश होता है, जिसमें राष्ट्रीय आत्मा मुखरिता होती है। भाषायी परिवेश में ही किसी भाषा के विकास या ह्रास की प्रक्रिया उसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता पर आधारित होती है। देश की भाषा के ही समान व्यक्ति विशेष की भाषा के विकास में भाषायी परिवेश की बलवती भूमिका होती है।

साहित्यकार समाज का सहृदय और सर्वाधिक चिंतनशील प्राणी है। समाज के प्रत्येक परिवर्तन पर साहित्यकार का मन सहज रूप से प्रभावित होता है, हृदय आंदोलित होता है और मस्तिष्क तथ्य को अपनाने के लिए विश्लेषण में डूब जाता है। मस्तिष्क में उठने वाला आंदोलन साहित्यकार को विचार—मंथन के गहन—पथ का राही बना देता है। साहित्यकार की मानसिकता और गतिशीलता 'सत्' पक्ष का अनुसरण और असत् पक्ष का विरोध करती है। जब कोई विषय संदर्भ साहित्यकार की चेतना को प्रभावित करता है, तो उसके चिंतन को विशेष दिशा और गति मिलती है। वास्तव में यही लेखक का परिवेश है। शोध लेखक ने साहित्यकार के परिवेश के विषय में अन्यत्र भी लिखा है, यह की परिवेश रचना और रचनाकार में मुखरित होता है। यह भी सत्य है कि रचनाकार का भावुक हृदय ऐसे ही भावलोक (परिवेश) में विचरण करता है। लेखक की रचना में उसका व्यक्तित्व भी उभरता है, किंतु उसमें परिवेश की झलक सर्वाधिक विस्तृत और प्रभावशाली होती है।

साहित्य में साहित्यकार के परिवेश की सजह अभिव्यक्ति के आधार पर कहा जाता है— साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकार सृजन संसार उसके भाषायी परिवेश पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आधारित होता है। साहित्यकार संवेदना के सहज धरातल पर विषय—संदर्भ में समीपी साक्षात्कार कर साहित्य सृजन करता है। यह एक सहजीकरण प्रक्रिया है, तो दूसरी ओर नूतन, सृजन भी है। साहित्यकार को एक जटिल और संश्लिष्ट प्रक्रिया से गुजरना होता है। प्रथम चरण में समकालीन परिवेश का विषय—संदर्भ साहित्यकार की चेतना को प्रभावित करता है और फिर अनुभूति का धरातल पा लेता है। जब परिवेश की अनुभूति को पुनर्जन्म मिलता है, तो साहित्य—संसार सामने आता है।

परिवेश के निर्माण में इतिहास, भूगोल, प्रकृति, व्यक्तिगत अभिरूचि और भाषायी आदि संदर्भों की समन्वित भूमिका होता है। साहित्यकार शारीरिक रूप में एक स्थान र और एक युग में साँस लेता है, किंतु वह मानसिक रूप में किसी भी युग में, किसी भी स्थान पर पहुँच कर साहित्य सृजन करता है। सच तो यह है कि साहित्यकार भौतिक जगत में रहकर मानसिक लोक में विचरण कर साहित्य सृजन करता है।

साहित्यकार के विभिन्न परिवेशों में अभिव्यक्ति के आधार भाषायी परिवेश का अपना महत्व है। साहित्य सृजन के समय साहित्यकार के सम्मुख तीन भाषायी परिवेशों की भूमिका होती है। प्रथम भाषायी परिवेश यह है कि जिसमें

रहकर साहित्यकार साहित्य रचना करता है, यथा—जायसी ने अवधी भाषायी परिवेश में रहकर पद्मावत की रचना की है। द्वितीय भाषायी परिवेश साहित्यकार को परंपरा से मिलता है, यथा—महिल मुहम्मद जायसी के माता—पिता आदि भी अवधी भाषाभाषी थे। अवधी भाषा उन्हें मातृभाषा के रूप में मिलती थी। तृतीय भाषायी परिवेश साहित्यकार के विषय से संबंधित होता है। यथा महानगर का लेखक जब किसी ग्रामीण नौकर को प्रस्तुत करता है, तो उसकी भाषा उसके मूल ग्राम्य रूप में होने पर प्रभावी सिद्ध होती है। इस प्रकार साहित्यकार तीन प्रकार के भाषायी परिवेशों के समन्वित रूप में रह कर साहित्य सृजन करता है। इनमें से एक अथवा एकाधिक भाषायी परिवेश प्रभावी हो सकते हैं।

संत रविदास निर्गुण उपासक भक्त कवि थे। सहजता उनके व्यक्तित्व की अपनी पहचान रही है। उन्होंने जीवन का प्रतिपल अपने लिए नहीं समाज के लिए जिया है। विभिन्न विद्वानों ने संत रविदास के जन्म स्थान के संदर्भ में राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश आदि के नामोल्लेख किया है। यह निर्विवाद सत्य है प्रत्येक व्यक्ति का जन्म एक ही स्थान पर होता है, किंतु महात्मा का जन्म अपने लिए न होकर समाज के लिए होता है। वह एक स्थान पर जन्म लेकर लोक श्रद्धावंश अनेक स्थानों से जुड़े जाता और जोड़ लिया जाता है। जब हम संत रविदास की भाषा के साथ उनके भाषायी परिवेश पर चिंतन करते हैं, तो अनेक महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आते हैं।

संत रविदास का समय 15 वीं और 16 वीं शताब्दी के मध्य माना गया है। उनके तत्कालीन भाषायी परिवेश पर चिंतन करते हैं, तो उनकी भाषा के रेखांकन योग्य तथ्य इस प्रकार उभरते हैं —

ह्रस्व स्वर बहुता रूप

रविदास की भाषा में अ. इ और उस ह्रस्व स्वरों की बहुलता दिखाई देती है।

इनके काव्य में अर्ध स्वर 'य' यत्र—तत्र ह्रस्व स्वर 'अ' के रूप में प्रयुक्त हो कर भाषा को अपेक्षाकृत अधिक मधुरता प्रदान करता है, यथा—

“गगन मंडल पिअ रूप सो, कोट भान उजियार।

रविदास मगन मनुआ भया, पिआ निहार—हार।।

इनकी काव्य भाषा की सर्व प्रमुख विशेषता है — 'इ' ध्वनि का बहुल प्रयोग। विभिन्न संयुक्त स्वरों—ए, ऐ, के स्थान पर इ का प्रयोग कर भाषा को सरल सहज बना कर अभिव्यक्ति को गंभीरता प्रदान की गई है—

स—इ— इनकी भाषा में सुयुक्त, दीर्घ, अर्ध संवृत अवृत्ताकार स्वर भाषायी लचीलेपन के लिए मूल, ह्रस्व, ह्रस्व, संवृत अवृत्ताकार स्वर का रूप धारण कर लेता है।

“बाहर खोजता का फिरइ घट भीतर ही खोज।

रविदास अमनि साधिकर, देखहु पिआ कूं!ओज।।

“रविदास सत्त इक नाम है, आदि अंत सचु नाम।

हनन करेइ सभ पाप ताप, सत्त सुखन करि

खान।।

“ओंकार को ध्यान मंहे, जौ लौं सुरति न होय।

तौ लौं सांचे ब्रह्मा कूं, रविदास न बूझइ कोय।।

इन पंक्तियों में फिरे से फिरइ एक से इक और बूझे से बूझइ शब्दों की रचना हुई है, जिसमें ए ध्वनि से इ ध्वनि का परिवर्तन स्पष्ट है।

ऐ—इ— संत रविदास की भाषा में संयुक्त दीर्घ, अर्ध विवृत अवृत्ताकार स्वर भाषायी सरलता हेतु

ह्रस्व, मूल, संवृत, अवृत्ताकार रूप धारण कर लेता है, यथा—

“जात पांत के फेर मंहि, उरझि रहइ सभ लोग।

मानुषता कूँ खात हइ, रविदास जात कर रोग।।”

“काबे अरु कैलास मंह, जिह कूँ दूढण जांह।

रविदास पिआरा राम तउ, बइठहिं मन मांह।।

इस प्रकार है से हइ बैठे से बइठहिं की रचना में इ स्वर की प्रभावोत्पादक भूमिका स्पष्ट है।

ओ-उ- रविदास के काव्य की ध्वनि सरलीकरण प्रक्रिया से संयुक्त, दीर्घ, अर्ध, संवृत, वृत्ताकार ‘ओ’ स्वर ध्वनि बदल कर मूल, ह्रस्व, संवृत और वृत्ताकार ‘उ’ स्वर ध्वनि बन जाती है : यथा—

‘रविदास सत्त करि आसरे, सदा सत्त सुख पाय।

सत इमान नहिं छांडिए, जग जाय तउ जाय।।’

बुद्धि अरु बिबेकहिं, जउ राखन चाहौ पास।

इंदिरियाँ संग निरत कौ, तजि देहु ‘रविदास’।।

यहाँ पर तो से ‘तउ’ और ‘जो’ से ‘जउ’ शब्दों की संरचना में ह्रस्व की भूमिका स्वतः स्पष्ट है। इनकी भाषा में स्वर प्रधानता का स्वरूप भी द्रष्टव्य है। अर्ध स्वर ‘व’ ही नहीं क्षेत्रीय भाषा में प्रयुक्त ‘व’ ध्वनि भी ‘उ’ स्वर में बदल गई है यथा—

‘रविदास बचन जौ दे दियौ, उह न जाने पाय।

बचन हरै कउ जगत मंहि कछु न सेस रहाय।।

“अंतहकरन अनभउ करहि, तउ मानहु सत्त।

रविदास निज अनुभउ मंहि, सत्त मंहि जानिहि
सत्त।।”

“अंतर्मुखी भइ जउ करहिं, सत्त नाम करि जाप।

रविदास तिन्ह सौ भजहुहिं, जगतह तीन्हहु ताप।।

यहाँ ‘वह’ से ‘उह’ अनुभय से ‘अनभउ’ और अनुभउ बनाने में अर्धस्वर ‘व’ के स्वर ‘उ’ परिवर्तन की प्रक्रिया सामने आई है। जब से ‘जउ’ परिवर्तन के ह्रस्व ‘उ’ के प्रयोग की बहुलता का बोध होता है।

इस प्रकार संत रविदास की भाषा में ह्रस्व स्वर अ इ और उ की बहुलता से तत्कालीन विशेष भाषायी परिवेश का बोध होता है। ह्रस्व स्वरों की बहुलता इनके काव्य में यत्र-तंत्र सर्वत्र देख सकते हैं : यथा—

जउ नाही या सररिस्ट मांहि सोउ होइहिं नांह।

रविदास इस्ट सर्वत्त है, सोइ रहइ सररिस्टिहिं
मांह।।

भाषा का यह ध्वन्यात्मक स्वरूप पूर्वी अवधी के परिवेश में ही संभव है। इस प्रकार संत रविदास का क्षेत्र बनारस ही सिद्ध होता है। इस क्षेत्र की कुछ व्यंजनात्मक ध्वनियों का स्वरूप भी इस तथ्य को सुनिश्चित करताह”।

श-स- इनकी काव्य भाषा में ह्रस्व स्वर प्रधानता के साथ तालव्य ऊष्म व्यंजन ध्वनि ‘श’ परिवर्तित होकर दन्त्य ऊष्म व्यंजन के रूप में प्रयुक्त होती है। वह क्षेत्रीय संदर्भ से प्रयत्नलाघव का प्रमाण है।

“सत्त सक्ति सों होत है, सभ पापन कर नामस।

बधिरा सत्त सों बोध लेइ, सत भाषै रविदास।।”

“रविदास सब्दह सह जबहिं सुखह इकमिक होई ।

अनुभूति सत्तनामह, स्वयं देतहिं लोई ॥

यहाँ पर ‘शक्ति’ से ‘सक्ति’, ‘नाश’ से ‘नास’ और शब्द से सब्दह शब्दों की रचना हुई है।

या-आ- अंतस्थ व्यंजन दीर्घ ध्वनि ‘या’ का दीर्घ, विवृत्त वृत्ताकार स्वर ‘आ’ में परिवर्तन होना भी इस भाषा की सहजीकरण और सरलीकरण प्रक्रिया का बोध कराता है –

“गगन मंडल पिउ रूप सो, कोट भान उजियार ।

रविदास मगन मनुआ भया पिआ निहार-निहार ॥

“जब-जब फैलेइ जगत मंहि, कूड़ पाप अंधियार ।

तब-तब राखै हत्थ देई, ‘रविदास’ इक राम
हमार ॥

ऋ-रि- रविदास से भाषायी परिवेश की सरलता को इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं कि इसमें उन्हीं स्वर या व्यंजन को अपना गया है, जिसमें मुख-सुख आभास हो। इसी सरलीकृत प्रवृत्ति पर स्वर से व्यंजन और व्यंजन से स्वर में सजह परिवर्तन का बोध होता है। परंपरागत तत्सम शब्दों में ‘ऋ’ की मात्रा का प्रयोग किया जाता है, यथा-संस्कृत, कृति या विकृति। इसके मूल रूप की ऐसे ही शब्दों में मिलता है, यथा-ऋषि, ऋतु आदि। इनकी भाषा में ‘ऋ’ स्वर व्यंजन ‘रि’ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सच तो यह है कि यह क्षेत्रीय भाषा की यह प्रमुख विशेषता है –

“रविदास’ जो करता सरिस्टि का, वह तो करता
एक ।

सभ मंह जाति सरूप इक, काहे कहूँ अनेक ।

‘रविदास हौं निज हत्थहिं, राखौं रांबी आर ।

सुकिरित ही मम धरम है, तारैगा भव पार ॥

ब-भ-पूर्वी अवधी में बनारस क्षेत्र विशेष के भाषायी परिवेश की सब से प्रमुख पहचान है कि ओष्ठ्य व्यंजन ध्वनि में अल्प प्राण ध्वनि का महाप्राणीकरण प्रबलता से होता है। रविदास की भाषा की यह प्रवृत्ति उनके परिवेश की देन है। यह प्रवृत्ति आज भी मिलता है—

“सभ नूरन कर नूर जउ, सभ तेजन मह तेज ।

‘रविदास’ हमरे पीव करि, सभ सो अदभूत सेज ॥

सभ मंहि एकु रामह जोति, सभनंह एकउ
सिरजनहारा ।

रविदास राम रमंहि सभन महि, ब्राह्मण हुई क
चमारा ।

संत रविदास की भाषा के आधार पर यदि उनके भाषायी परिवेश पर विश्लेषण करें, तो स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि ऐसी भाषा में तत्कालीन, परंपरागत और विषयगत तीनों परिवेशों का सजह और आकर्षक समन्वित रूप है। इस प्रकार संत रविदास ने बनारस के भाषायी परिवेश में रहकर जन सामान्य के साथ सहज संवाद करते हुए काव्य रचना की है। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनके मन में आदर्श समाज की कल्पना भी और ऐसे ही समाज की कामना में परंपरा से प्राप्त भाषायी परिवेश को सफल संप्रेषण के लिए अपनाते रहे हैं। उनके समन्वित भाषायी परिवेश की देन है कि इसकी भाषा में जाति पांति के भेद को दूर करने के भाव को कितनी आकर्षक अभिव्यक्ति मिली है।

“रविदास जाति मत पूछइ का जात का पात ।

ब्राह्मण खत्री बैस सूत्र, सभन की इक जात ।।”

“जन्म जात मत पूछिए, का जात अरु पात ।

**रविदास पूत सभ प्रभ के, कोउ नहीं जात
कुजात ।**

यदि संत रविदास के जीवन-परिचय तत्कालीन परिस्थितियों और वंश-परंपरा का अध्ययन करते हैं, तो उनका समन्वित भाषायी परिवेश बनारस की अवधी भाषा के रंग में रँगा दिखाई देता है। जब उनकी भाषा के स्वरूप का विश्लेषण करते हैं, तो यह तथ्य पूर्णरूपेण यथावत सामने आता है।

सहज समन्वित भाषायी परिवेश से उद्भूत भाषा में आकर्षक अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक है। समता, समानता और सौमनस्य भाव की कामना में वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श पाने के लिए कवि आतुर है –

“रविदास कोउ अल्लड कहइ, कोउ पुकारइ राम ।

केसउ क्रिश्न करीम सभ माधउ मुकुंदह नाम ।।”

इस भाषायी संरचना को देखकर भाषा-प्रयो की सहजता ही नहीं समन्वित पूर्वी हिन्दी के भाषायी परिवेश का बोध होता है। ह्रस्व स्वरों अ, इ, उ की बहुलता, अर्थात् ह्रस्वीकरण की प्रबल प्रवृत्ति इस भाषायी परिवेश की सरलता और मधुरता को प्रतिपादित करती है। इस एक ही दोहे में महाप्राणीकरण, सरलीकरण, प्रयत्नलाघव आदि का मनभावन रूप दिखाई देता है। यह सब भाषायी परिवेश की सजह देने हैं।

संत रविदास ने संघर्षमम जीवन में आदर्श समाज की कामना में जन सामान्य को बार-बार लगातार संबोधित किया है। वे जिस प्रकार के सजह भाषायी परिवेश में जीते रहे उसी प्रकार समाज को बाह्याडंबर, विषमता और रूढ़ियों से

मुक्त सहज मानवतावादी धारा से जोड़ने चाहते थे। उन्होंने तत्ववेत्ता ब्राह्मणों को आदर दिया है। किंतु कर्म-धर्म च्युत ब्राह्मणों की ही नहीं क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की खुल कर खबर ली है। सच तो यह है कि वे तत्कालीन विकृत जाति-व्यस्था से अत्यंत दुखी थे। समन्वित आकर्षक भाषायी परिवेश के धरातल से पल्लवित पुष्पित भाषा की प्रभावी अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है :-

“रविदास जोउ वेता ब्रह्म कर सोई ब्राह्मण जान ।

ब्रह्म न जउ जानिहि, तउ न ब्राह्मण मान ।।

संत कवि ने सजह जीवन जीने के लिए सजह और सरल भाषा में हर जाति को धम-पालन कर स्वाभिमान जगाने और सुखद परिवेश बनाने का आह्वान किया है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सम्मुख खड़ा संत कामनपा कर रहा है, कि सब कर्मठ और धार्मिक बने-

दीन दुखी के हेत जउ, बारै अपने प्राण ।

रविदास उह नर सूर काँ, सांचा छत्री जान ।।

सांची हाटी बैठि कर, सौदा सांचा देंइ

तकड़ी तोलै सांच की, रविदास बैस है सोइ ।।

“रविदास जउ अति पवित्त है, सोई सूदर जान ।

जउ कुकरमी असुध जन, तिन्ह ही न सूदर जान ।

महान समन्वयवादी संत रविदास ने पूर्वी अवधी के समन्वित भाषायी परिवेश से उद्भूत सजह भाषा में धार्मिक और सामाजिक समन्वय का अनुकरणीय प्रयास किया है :-

**“मंदिर मसजिद दोउ एक हैं, इन मंह अंतर
नाहि ।**

रविदास राम रहमान का झगड़उ कोउ नाहि ।।

संत रविदास के जीवन और जीवन-दर्शन पर चिंतन करने से स्पष्ट होता है कि उनके सजह और साधारण जीवन-यापन में दिव्य विचारों को विकसित होने का अवसर मिला है। खंडन के साथ मंडन और विषमगति –निषेध के साथ सन्मार्ग की ओर गतिशील रहने की प्रबल प्रेरणा इनके काव्य की अपनी विशेषता है। सरल भाषा में सजह अभिव्यक्ति का मूलाधार है – इसका समन्वित भाषायी परिवेश। संत रविदास को यह भाषा अपने पूर्वजों से विरासत के रूप में मिली थी अर्थात् इनके माता-पिता, आदि ऐसे ही भाषायी परिवेश के सदस्य थे। ये स्वयं भी ऐसे सजह भाषायी परिवेश में जीवन जी रहे थे। इनका तृतीय भाषायी परिवेश भी वही था, क्योंकि वे समाज-सुधार और भक्ति भावना को जन-सामान्य तक पहुँचाने के अभिलाषी थे। सामाजिक संदर्भ में उत्कर्ष मार्ग अपनाने के लिए सहजता की अनिवार्यता होती है। निश्चय ही संत रविदास के समन्वित पूर्वी अवधी के प्रभावी भाषायी परिवेश से उद्भूत सहस भाषा में मानवतावादी दृष्टिकोण को अनुप्रेरक अभिव्यक्ति मिली है। समन्वित भाषायी परिवेश के सहज धरातल से विकसित समाज सुधार की भावनायुक्त भाषा की आकर्षक और मनमोहक संप्रेषणीयता भी उल्लेखनीय है। निश्चय ही इनकी सरल, सजह और बोधगम्य भाषा के विकास में इनके समन्वित भाषायी परिवेश की प्रभावी भूमिका रही है।

संदर्भ

- डॉ० नरेश मिश्र, अनुप्रयुक्त भाषा-चिंतन
- डॉ० राजेन्द्र सिंह, संत रविदास और गुरु अमरदास का काव्य
- आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद रविदास दर्शन
- हिन्दी भक्तिकालीन काव्य – डॉ० आर०पी० वर्मा
- हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- रैदासबानी- शुकदेव सिंह
- निर्गुण काव्य प्रेरणा और प्रवृत्ति
- संत रविदास – दर्शनिक विचार – डॉ० शिप्रा वर्मा
- गुरु रविदास आचार्य पृथ्वी सिंह
- संत शिरोमणि गुरु रविदास-सुमन
- संत रविदास वाणी- कुंकल डॉ० कुसुमबाला
- संत रविदास और उनका काव्य पद – स्वामी रामानन्द शास्त्री
- संत स्वामी रविदास जी और उनका काव्य – स्वामी रामानन्द शास्त्री
- हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उनकी दर्शनिक पृष्ठ भूमि- गोविन्द त्रिगुणामत